श्रीमद्भगवद्गीता में वर्णित वर्ण–व्यवस्था का स्वरूप

गवेषिका
क्षमा
संस्कृत विभाग
इलाहाबाद विश्वविद्यालय
इलाहाबाद।

'श्रीमद्भगवद्गीता' संस्कृत साहित्य का अत्यन्त विलक्षण और अलौकिक ग्रन्थ है। यह महाभारत के भीष्म पर्व के तईसवे से चालीसवें अध्याय तक उद्धृत है। यह ग्रन्थ कुल अट्ठारह अध्याय– अर्जुनविषादयोग, सांख्ययोग, कर्मयोग, ज्ञानकर्मसन्यासयोग, कर्मसन्यासयोग, आत्मसंयमयोग, ज्ञानविज्ञानयोग, अक्षरब्रह्मयोग, राजविद्याराजगुह्ययोग, विभूतियोग, विश्वरूपदर्शनयोग, भक्तियोग, क्षेत्रक्षेत्रज्ञविभागयोग, गुणत्रयविभागयोग, पुरुषोत्तमयोग दैवासुरसम्पदविभागयोग, श्रद्धात्रयविभागयोग, मोक्षसन्यासयोग में विभक्त हैं। इसके रचयिता अज्ञात होने के कारण इसके सङ्कलन का श्रेय महाभारत के पौराणिक सङ्कलनकर्त्ता कृष्णद्वैपायन महर्षि वेदव्यास को दिया जाता है। इसमें भगवान् श्रीकृष्ण द्वारा अर्जुन को दिया गया उपदेश श्लोकरूप में निबद्ध है।

अमरकोश में 'वर्ण' शब्द के तीन अर्थ ब्राह्मणादि चार वर्ण, शुक्लादिरङ्ग तथा स्तुति बताये गये हैं।[1] व्यवस्था के रूप में वर्ण शब्द, निश्चित ही ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र इन चारों के लिए प्रयुक्त हुआ होगा। परन्तु प्रश्न यह उठता है कि किस आधार पर ब्राह्मणादि को 'वर्ण' नाम से अभिहित किया गया। इसके उत्तर में भगवान् श्रीकृष्ण गीता में कहते है– 'चातुर्वर्ण्यं मया सृष्टं गुणकर्मविभागशः।[2] अर्थात् मैनें चारों वर्णों को गुण और कर्म के आधार पर विभाजित किया है। एक अन्य स्थल पर भगवान् श्रीकृष्ण कहते हैं– ''हे परत्तप! ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, और शूद्रों के कर्म

[1] 'वर्णो द्विजादौ शुक्लादौ स्तुतौ वर्णं तु चाक्षरे' इत्यमरः।–3.3.48

[2] श्रीमद्भगवद्गीता, अध्याय 4/13

स्वभाव से उत्पन्न हुए गुणों के द्वारा विभक्त किये गये हैं।[3] महाभारत में वर्णव्यवस्था के सम्बन्ध में कहा गया है–

एक वर्णमिदं पूर्वं विश्वमासीद् युधिष्ठिर।

कर्म क्रियाभिभेदेन चातुर्वर्ण्यं प्रतिष्ठितम्।।[4]

अर्थात् 'हे युधिष्ठिर। प्रारम्भ में सम्पूर्ण विश्व एक ही वर्ण का था परन्तु गुण, कर्म के कारण यह चार वर्णों में विभाजित हो गया।''

ऋग्वेद के पुरुष सूक्त में लिखा है–

ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद् बाहू राजन्यः कृतः।

उरू तदस्य यद्वैश्यः पद्भ्यां शूद्रो अजायत।।[5]

तात्पर्य है– ''इस पुरुष का मुख ब्राह्मण हुआ अर्थात् ब्राह्मण इसके मुख से उत्पन्न हुए। भुजाओं को क्षत्रिय बनाया गया अर्थात् क्षत्रिय इसकी भुजाओं से उत्पन्न हुए। जो इसकी जाँघे थी वे वैश्य इस पुरुष की जाँघों से उत्पन्न हुए और इसके पैरों से शूद्र उत्पन्न हुए।''

इसका लाक्षणिक अर्थ स्पष्ट करते हुए इस प्रकार की उत्पत्ति का तात्पर्य गुण और कर्म ही माना जा सकता है। क्योंकि ब्राह्मण की उत्पत्ति मुख से बताया गया है जो शरीर का सबसे पवित्र और उच्च भाग है इसलिये इसे ऋग्वेद में अभिजात वर्ग नाम से सम्बोधित किया गया है, भुजा का गुण रक्षा करना और गौरव अर्थ में लिये जाने के कारण, इससे उत्पन्न क्षत्रिय को गौरव प्राप्त करने वाला बताया गया है। जाँघ का कार्य शरीर को अन्न के द्वारा लाभ अर्जित करना है, इसीलिये जाँघ से उत्पन्न वैश्यों को लाभ संगृहीत करने वाले गुण से अलंकृत किया गया।[6]

---

[3] ब्राह्मणक्षत्रियविशां शूद्राणां च परन्तप।
कमणि प्रविभक्तानि स्वभावप्रभवैर्गुणैः।।–श्रीमद्भगवद्गीता, अध्याय 18/41।

[4] महाभारत, शान्तिपर्व

[5] ऋग्वेद 10/90/12

[6] शिवस्वरूपसहाय, हिन्दू सामाजिक संस्थायें किताब महल, पृ0 30

स्मृतियाँ भी गुण और कर्म को वर्ण का आधार बताते हुए कहती है– ''ब्रह्मा ने लोकों की वृद्धि के लिए मुख, बाहु, जंघा और चरण से ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र, इनको क्रम से बनाया।''[7] मनुष्य में पूर्वजन्मों के कर्मसंस्कार के कारण सत्व, रजस और तमस गुणों का न्यूनाधिक्य होता है इन्हीं गुणों और कर्मों के आधार पर वर्ण विभाजन हुआ है अर्थात् सत्वगुण की प्रधानता वाले को ब्राह्मण, सत्वमिश्रित रजोगुण की प्रधानता वाले को क्षत्रिय, तमोमिश्रित रजोगुण की प्रधानता वाले को वैश्य, रजोमिश्रित तमोगुण की प्रधानता वाले को शूद्र कहा गया है।[8]

गीताशास्त्र, प्रत्येक वर्ण के स्वाभाविक कर्मों को बताते हुए कहती है कि –''ब्राह्मण के शम, दम, तप, शौच, क्षमा, आर्जव, ज्ञान, विज्ञान और आस्तिकता स्वाभाविक कर्म है।''[9] जिसमें शम–बाह्य इन्द्रियों का नियमन, दम–अन्तःकरण का नियमन, तप–स्वधर्मपालन के लिए कष्ट सहना, शौच–मन, इन्द्रिय और शरीर को तथा उनके द्वारा की जाने वाली क्रियाओं को पवित्र रखना, क्षमा–दूसरों के द्वारा पीड़ित होने पर भी मन में कोई विकार न रखना, आर्जव–मन की भावानुरूप इन्द्रियों को प्रकट करना, ज्ञान–वेद और शास्त्रों के यथार्थ उपदेश को समझ लेना, विज्ञान–परमात्मा के विषय में असाधारण ज्ञान, आस्तिकता– सम्पूर्ण वैदिक सिद्धान्त की सत्ता पर पूर्ण विश्वास करना है। मनुस्मृति भी ब्राह्मण के कर्मों का उल्लेख करती हुई कहती है– ''पढ़ना, पढ़ाना, यज्ञ करना, यज्ञ कराना, दान देना, दान लेना ये छः कर्म ब्राह्मणों के रचे।''[10]

गीता के अनुसार–शौर्य, तेज, धृति, दक्षता, युद्ध से न भागना, दान और ईश्वरभाव क्षत्रिय के स्वभावज कर्म है।[11] युद्ध में निर्भयपूर्वक प्रवेश करना शौर्य, दूसरों के दबाव में न आकर कर्त्तव्य

---

[7] लोकानां तु विवृद्धयर्थे मुखबाहूरुपादतः।
ब्राह्मणं क्षत्रियं वैश्यं शूद्रं च निरवर्तयत्।।–मनुस्मृति, अध्याय 1–31

[8] श्रीमद्भगवद्गीता, तत्त्वविवेचनी, पृष्ठ 178–179

[9] शमो दमस्तपः शौचं क्षान्तिरार्जवमेव च।
ज्ञानं विज्ञानमास्तिक्यं ब्रह्मकर्म स्वभावजम्।।–श्रीमद्भगवद्गीता, अध्याय 18/42

[10] अध्यापनमध्ययनं यजनं याजनं तथा।
दानं प्रतिग्रहं चैव ब्राह्मणानामकल्पयत्।–मनुस्मृति, अध्याय 1.88

[11] शौर्यं तेजो धृतिर्दाक्ष्यं युद्धे चाप्यपलायनम्।

पालन करना तेज, कर्मों में विघ्न उपस्थित होने पर उसे पूर्ण करने में लगे रहना धैर्य, समस्त क्रियाओं को कुशलतापूर्वक सम्पादन करने को दक्षता, पराजय निश्चित होने पर भी युद्ध से विमुख न होना अर्थात् युद्ध से न भागना, स्वयं की सम्पत्ति को उदारतापूर्वक दूसरे की सम्पत्ति बनाना दान, तथा समस्त जन–समुदाय को निःस्वार्थभाव से प्रेमपूर्वक रक्षा और पालन–पोषण करना ईश्वरभाव कहलाता है। मनुस्मृति में प्रजा की रक्षा, दान देना, यज्ञ करना, पढ़ना और विषयों में न लगना' ये सब क्षत्रिय कर्म बताये गये हैं।[12] इसके विपरीत अध्यापन, याजन तथा दान ग्रहण करने से रोका गया है।[13]

गीता, ''कृषि, गोरक्षा और व्यापार को वैश्य के स्वभावज कर्म तथा सेवारूप कर्म, शूद्र का भी स्वभावज है।[14] अन्नादि को उत्पन्न करने के लिए भूमि को जोतना–कृषि, गायादि पशुओं की रक्षा एवं पालन–गोरक्षा, धनसञ्चय के लिए वस्तुओं का क्रय–विक्रय करना– व्यापार कहलाता है। मनुस्मृतिकार ने पशुओं की रक्षा, दान देना, यज्ञ करना, पढ़ना, व्यापार, ब्याज और खेती ये कर्म वैश्य के बनाए।[15] शूद्र वर्ण के लिए उपर्युक्त तीनो वर्णों– ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य की सभी प्रकार से सहायता और सेवा करना बताया है। मनुस्मृति में कहा गया है कि शूद्र का एक ही कर्म है कि, वह इन चारों वर्णों की निष्कपट होकर सेवा करें।[16]

दानमीश्वरभावश्च क्षात्रं कर्म स्वभावजम्।।– श्रीमद्भगवद्गीता, अध्याय 18/43

[12] प्रजानां रक्षणं दानमिज्याध्ययनमेव च।
विषयेष्वप्रसिक्तश्च क्षत्रियस्य समागतः।।–मनुस्मृति, अध्याय 1.89

[13] त्रयो धर्मा निर्वतन्ते ब्राह्मणात्क्षत्रियं प्रति।
अध्यापनं याजनं च तृतीयश्च प्रतिग्रहः।।–वही 10.77

[14] कृषिगौरक्ष्यवाणिज्यं वैश्यकर्म स्वभावजम्।
परिचर्यात्मकं कर्म शूद्रस्यापि स्वभावजम्।।–श्रीमद्भगवद्गीता, अध्याय 18/44

[15] पशूनां रक्षणं दानमिज्याध्ययनमेव च।
वणिक्पथं कुसीदं च वैश्यस्य कृषिमेव च।।–मनुस्मृति, अध्याय 1/90

[16] एकमेव तु शूद्रस्य प्रभुः कर्म समादिशत्।
एतेषामेव वर्णानां शुश्रूषामनसूयया।–मनुस्मृति, अध्याय 1/91

गीताशास्त्र, इन चारों वर्णों के नियत कर्म के महत्त्व को प्रतिपादित करते हुए कहती है कि मनुष्य को अपने–अपने नियत कर्मों में तत्परता से लगे रहना चाहिए, क्योंकि मनुष्य अपने कर्मों के द्वारा ही मोक्ष को प्राप्त होता है।[17] यहाँ पर प्रश्न उठता है कि मनुष्य किस प्रकार मोक्ष प्राप्त करता है? इसके उत्तर में श्रीकृष्ण अर्जुन से कहते हैं ''जिस परमेश्वर से सम्पूर्ण प्राणियों की उत्पत्ति हुई है और जिससे यह समस्त जगत् व्याप्त है। उदाहरणस्वरूप जिस प्रकार बादलों में जल व्याप्त है परन्तु वह दिखायी नहीं देता, उसी प्रकार सम्पूर्ण जगत् परमात्मा में व्याप्त है। उस परमेश्वर की अपने स्वाभाविक कर्मों के द्वारा पूजा करके मनुष्य परमसिद्धि अर्थात् मोक्ष को प्राप्त हो जाता है।''[18] तात्पर्य यह है कि मनुष्य के जीवन का प्रत्येक कर्म परमात्मा की उपासना है।

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि गीता जिसमें सभी शास्त्रों का सार संग्रहीत है उसमें भी वर्ण व्यवस्था जातिगत न होकर गुणाश्रित बताया गया है कुछ आलोचक जो वर्ण–व्यवस्था के प्रसङ्ग पर यह कहते हैं कि भारतीय धर्मशास्त्रों में वर्णव्यवस्था वंशानुगत होने के साथ–साथ, शूद्रों के साथ सौतेला व्यवहार किया गया है उनका यह कथन अत्यन्त निन्दनीय कहा जा सकता है क्योंकि वेदों से लेकर गीता आदि सभी शास्त्रों में वर्णव्यवस्था कर्मणा थी।

वर्तमानकाल में वर्णव्यवस्था में कर्म का स्थान जन्म ने ले लिया। जिसके कारण प्राणियों में संकीर्ण मानसिकता जैसे–जात–पाँत, ऊँच–नीच, छुआछूत आदि उत्पन्न हो गयी और जो भारतवर्ष वैदिककाल से लेकर महाभारत काल तक अत्यन्त समृद्ध तथा विश्वगुरू नाम से विख्यात था, वही आज पतनोन्मुख हो रहा है।

[17] श्रीमद्भगवद्गीता, अध्याय 18/45

[18] श्रीमद्भगवद्गीता, अध्याय 18/46